RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 41 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 27 दिसम्बर, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 41, 24-27 दिसम्बर 2020 तदनुसार 13 पौष, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

उपदेशकों का गुरु

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम्।।

-ऋ. ३।२६।९

शब्दार्थ-शतधारम् = सैकड़ों धाराओं वाले **अक्षीयमाणम्** = कभी क्षीण न होने वाले **उत्सम्** = स्रोत के समान **विपश्चितम्** = महाज्ञानी **वक्त्वानाम्** = वक्ताओं के, उपदेशकों के भी **पितरम्** = पिता, पालक, गुरु, **मेळिम्** = सबको मिलाने वाले **पित्रोः** = माँ-बाप अथवा द्यौ-पृथिवी की **उपस्थे** = गोद में **मदन्तम्** = आनन्द देने वाले **तम्** = उस **सत्यवाचम्** = सत्य, निर्भ्रान्त वेद-वाणी वाले को **रोदसी** = द्यौ और पृथिवी **पिपृतम्** = भर रहे हैं, धारण कर रहे हैं।

व्याख्या-भगवान् सैकड़ों प्रकार से जीव को बोध कराते हैं। यह सारी सृष्टि उसी का बोध कराती है। उसका ज्ञान कभी भी क्षीण नहीं होता। सभी ज्ञानी उसी से ज्ञान लेते हैं, किन्तु उसका स्रोत अक्षीयमाण है। ऋषि कह गये हैं-**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते** = उस पूर्ण का ज्ञान लेकर भी उसके बाद पूर्ण ही शेष रह जाता है। हुआ जो वह अक्षीयमाण उत्स और साथ ही शतधार=सैकड़ों धाराओं वाला, किन्तु उसे जड़ जल न समझना, वह है **विपश्चित्** = महाज्ञानी। छोटा ज्ञानी भी नहीं, वरन् वह-**'पितरं वक्त्वानाम्'** = उपदेशकों का भी गुरु है। पतञ्जलि जी ने भी इस गुरु के स्वर-में-स्वर मिलाकर कहा है-**स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् (यो० १।२६)** = वह परमात्मा पूर्वों का, सृष्टि के आरम्भ के गुरुओं का भी गुरु है, सभी गुरु कराल काल के गाल में विला जाते हैं, किन्तु यह कालातीत है, काल का भी काल है और वह है सत्योपदेशक। मनुष्य अल्पज्ञ है, उसे भ्रम हो सकता है, विप्रलिप्सा=ठग्गी की कामना भी हो सकती है, अतः स्वयं बहका होने के कारण दूसरों को बहका सकता है, किन्तु भगवान् हैं सत्यवाक्। उनकी वाणी में असत्य का लवलेश भी नहीं है, हुए जो वे सर्वज्ञ, अतः सत्य-सत्य ज्ञान का उपदेश करते हैं।

संसार में जितना आनन्द है वह उन्हीं का है। इस संसार में रखकर जीवों को वही आनन्द देते हैं। उन्हें खोजने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं, पत्ता-पत्ता उनकी सत्ता तथा महत्ता का पता दे रहा है। देखो, आँखें खोलो। नहीं दीखता तो उस कृपालु के वेदवचन को सुनो-**तं रोदसी पिपृतम्** = उसे द्यावापृथिवी= सारा संसार धार रहा है, अर्थात् उसे पाने के लिए कहीं दूसरे स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं है, वह सर्वत्र विद्यमान है, सारे संसार में व्यापक है, भर रहा है। जो सब स्थानों में है, उसे सभी स्थानों में पा सकते हैं। कैसा विचित्र है, सभी स्थानों में है और दीखता नहीं है, क्योंकि **'न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्'**-श्वेता० ४।२०। इसे दिखाने के लिए कोई रूप नहीं है और न ही कोई उसे आँख से देख सकता है। उसे तो हृदय और मन से देखना चाहिए, क्योंकि सब जगह रहने वाला हृदय में रह रहा है-**हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति**-श्वेता० ४।२०। उस हृदय में रहने वाले को हृदय तथा मन से जानो और मुक्ति प्राप्त करो। **(स्वाध्याय संदोह से साभार)**

वर्ष 2021 के नए कैलेण्डर मंगवाए

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.), चौक किशनपुरा जालन्धर द्वारा प्रति वर्ष हजारों की संख्या में नव वर्ष के कैलेण्डर महर्षि दयानन्द के चित्र के साथ देसी तिथियों सहित छपवाए जाते हैं। गत कई वर्षों से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) वैदिक साहित्य आधे मूल्य पर आर्य जनता को उपलब्ध करवा रही है। इसी प्रकार सन् 2021 के महर्षि दयानन्द सरस्वती के चित्र वाले कैलेण्डर भी आधे मूल्य पर आर्य जनता को दिए जाएंगे। पिछले वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी कैलेण्डर का मूल्य छह रुपये प्रति तथा 600 रुपए सैकड़ा रखा गया है। इसलिये सभी आर्य समाजें, शिक्षण संस्थाएं व आर्य बन्धु शीघ्र अति शीघ्र कैलेण्डर सभा कार्यालय से मंगवा कर अपने सदस्यों व इष्ट मित्रों में वितरित करें। कार्यालय का समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 5 बजे तक है। रविवार को अवकाश रहता है इसलिये समय पर अपना व्यक्ति भेज कर कैलेण्डर मंगवाएं।

प्रेम भारद्वाज
सभा महामंत्री

ज्यायान्निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि।।

-अथर्व० ९.२.२३

भावार्थ-परमेश्वर! आप चर-अचर संसार से और आकाश और जलनिधि से बहुत बड़े हैं। ऐसे आपको ही मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

ऋषि दयानन्द ने वेदोद्धार सहित अन्धविश्वास एवं कुरीतियों को दूर किया

ले.-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

प्रकाश करने की आवश्यकता वहां होती है जहां अन्धकार होता है। जहां प्रकाश होता है वहां दीपक जलाने वा प्रकाश करने की आवश्यकता नहीं होती। हम महाभारत काल के उत्तरकालीन समाज पर दृष्टि डालते हैं तो हम देखते है कि हमारा समाज अनेक अज्ञान व अविद्यायुक्त मान्यताओं के प्रचलन से ग्रस्त था। यदि इन अविद्यायुक्त अन्धविश्वासों पर दृष्टि डाली जाये तो हमें इसका कारण वेदज्ञान के प्रचार का न होना, मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध तथा अवतार आदि की कल्पना व व्यवहार मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। ईश्वर का वास्तविक स्वरूप हमें चार वेदों व उपनिषद आदि ग्रन्थों से प्राप्त होता है। वेदों का ज्ञान स्वयं सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर से ही सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को मिला है। वेदों में ईश्वर ने स्वयं अपने स्वरूप का परिचय दिया है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में परमात्मा ने स्वयं को अजन्मा, काया से रहित तथा नस-नाड़ी आदि के बन्धनों से रहित बताया है। अत: ईश्वर के मनुष्य के रूप में अवतार लेने व होने का खण्डन स्वयं ईश्वरीय ज्ञान वेदों से होता है। परमात्मा ने इस सृष्टि व ब्रह्माण्ड को बनाया है। ऐसा उसने अपने सच्चिदानन्द, सर्वज्ञ, अनादि नित्य, निराकार, सर्वव्यापक एवं सर्वान्तर्यामी स्वरूप से किया है। क्या यह कार्य छोटा कार्य था? यदि परमात्मा निराकारस्वरूप से सृष्टि की रचना, पालन व प्रलय आदि कार्य कर सकते हैं तो वह निश्चय ही रावण, कंस, दुर्योधन जैसे साधारण शरीरधारी जीवों का प्राणोच्छेद भी कर ही सकते हैं। आज भी प्रतिदिन वह बिना अवतार लिए लाखों वा करोड़ों लोगों व प्राणियों का प्राणोच्छेद करते ही हैं।

देश देशान्तर में जब कहीं युद्ध आदि होते हैं तो उसमें एक समय में ही सैकड़ों वा हजारों लोग मरते हैं। उन सबका प्राणोच्छेद व मृत्यु ईश्वर द्वारा उनकी आत्मा को उनके शरीरों से पृथक करने पर ही होती है। अत: ईश्वर का अवतार लेना वेद सहित तर्क एवं युक्तियों से सिद्ध नहीं होता। ईश्वर विश्व व सृष्टि में जो भी कार्य कर रहा है, वह सब बिना किसी अवतार को धारण किये कर सकता है। अत: अवतार लेने व उसकी मूर्तिपूजा करने का विचार व धारणा सत्य के विपरीत एवं वेदविरुद्ध होने से विश्वास करने योग्य नहीं है। ऋषि दयानन्द को मूर्तिपूजा की निरर्थकता का बोध अपनी आयु के चौदहवें वर्ष में शिवरात्रि के अवसर पर शिवरात्रि की पूजा करते हुए हुआ था। मूर्तिपूजा सर्वव्यापक व सच्चिदानन्द की पूजा नहीं है, यह बात उनके समाधि अवस्था को प्राप्त होने, ईश्वर का साक्षात्कार करने तथा वेदों का सर्वांगरूप में अध्ययन करने पर सत्य सिद्ध हुई थी। इस कारण समाज को अज्ञान व अन्धविश्वासों से हो रहे पतन से निकाल कर मनुष्य की लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति करने कराने के लिए उन्होंने मूर्तिपूजा व अवतारवाद का विरोध किया। इसके साथ ही ऋषि दयानन्द ने ईश्वर के सत्यस्वरूप की उपासना का धारणा व ध्यान की विधि से स्तुति, प्रार्थना व उपासना करते हुए विधान किया जो कि सृष्टि के आरम्भ से न केवल गृहस्थ आदि सामान्य जन अपितु ऋषि, मुनि व महर्षि करते चले आ रहे थे। अति प्राचीन काल में ऋषि पतंजलि ने ईश्वर की उपासना पर विचार कर वेदानुकूल ईश्वर की उपासना का ग्रन्थ ''योग दर्शन'' रचा था। इसी योगदर्शन प्रदत्त अष्टांग योग की विधि से उपासना करने से ईश्वर का साक्षात्कार एवं मोक्ष की प्राप्ति उपासक व साधक मनुष्य की आत्मा को होती है।

ऋषि दयानन्द ने सत्य का प्रचार मौखिक उपदेशों व व्याख्यानों के द्वारा किया। इसके साथ ही उन्होंने अनेक विषयों पर अनेक ग्रन्थों की रचना भी की। सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा संस्कार विधि उनकी प्रमुख रचनायें हैं। वेदों का भाष्य उनका सबसे महत्वपूर्ण एवं महान कार्य है। स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य से वेद के नाम पर प्रचलित सभी मिथ्या विश्वासों का खण्डन होता है तथा सत्य विश्वासों का प्रकाश होता है। स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य इतिहास में अपूर्व है। यह भावी सभी वेदभाष्यकारों के लिये पथप्रदर्शक है। उनके भाष्य से ही विद्वानों को वेदार्थ शैली का ठीक ठीक ज्ञान होता है। वह आदर्श वेदभाष्यकार हैं। इस प्रकार से ऋषि दयानन्द ने देश देशान्तर में प्रचलित अविद्या व अन्धविश्वासों को दूर करने का प्रयत्न किया।

ऋषि दयानन्द ने सभी अन्धविश्वासों का आधार मूर्तिपूजा को माना है। उनके अनुसार ईश्वरीय ज्ञान वेदों में मूर्तिपूजा का विधान कहीं नहीं है और न ही यह ईश्वर की उपासना के लिये तर्क एवं युक्ति से पूर्ण है। मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध होने तथा इसकी पुष्टि करने के लिये उन्होंने दिनांक 16 नवम्बर, सन् 1869 को काशी के 27 से अधिक शीर्ष पण्डितों से अकेले शास्त्रार्थ किया था। यह शास्त्रार्थ आज भी लेखबद्ध उपलब्ध होता है। इसको लेखबद्ध भी सम्भवत: ऋषि दयानन्द ने स्वयं ही किया है। इसे पढ़कर मूर्तिपूजा पर हुए शास्त्रार्थ में काशी के पण्डितगण किसी वेद मन्त्र, तर्क एवं युक्ति को अपने पक्ष में नहीं दे पाये थे जिससे इसका करना वेद व ज्ञान विज्ञान सम्मत सिद्ध होता। ऋषि दयानन्द ने यह भी सूचित किया है कि अट्ठारह पुराण ऋषि वेद व्यास की रचनायें नहीं हैं अपितु इनकी रचना ऋषि वेदव्यास जी की मृत्यु के बाद मध्यकाल में की गई है। यह पुराण, प्राचीन पुराण ग्रन्थ न होकर अर्वाचीन ग्रन्थ है। प्राचीन पुराण ग्रन्थों का वास्तविक नाम वेद, ब्राह्मण, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों पर सिद्ध होता है जो महाभारत युद्ध से भी प्राचीन हैं तथा जिनकी रचना प्राचीन वेद के ऋषियों ने वेदों के अर्थों के प्रचार प्रसार के लिये की थी।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश को चौदह समुल्लासों में लिखा है जिसके प्रथम 10 समुल्लासों में वैदिक मान्यताओं व सिद्धान्तों पर प्रकाश डालकर उनके सत्य व मान्य होने का मण्डन किया गया है। सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्ध के चार समुल्लास अवैदिक मतों की समीक्षा व खण्डन में लिखे गये हैं जिनमें मत-मतान्तरों में विद्यमान अविद्या व अज्ञान युक्त कथनों व मान्यताओं की समालोचना की गई है। इस समालोचना से वेदों की महत्ता सिद्ध होती है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ऋषि दयानन्द का चार वेदों के भाष्य की भूमिका स्वरूप लिखा गया अपूर्व व महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में चार वेदों में सब सत्य विद्याओं के होने का दिग्दर्शन कराया गया है। इस ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि वेद केवल यज्ञ आदि करने कराने के ग्रन्थ नहीं है जैसा कि कुछ मध्यकालीन आचार्यों ने समझा था। वेदों में सब सत्य विद्यायें होने से यह मनुष्यों के आचार विचार व धर्म के ग्रन्थ है। ऋषि दयानन्द ने वेदों के ज्ञान व आचरण को ही मनुष्य का परमधर्म बताया है और इसके नित्य प्रति पठन पाठन सहित प्रचार करने की प्रेरणा की है। ऋषि दयानन्द ने वेदों के प्रचार प्रसार द्वारा देश व समाज से अविद्या दूर करने के लिए 10 अप्रैल सन् 1875 को आर्यसमाज नाम से एक संगठन व आन्दोलन की स्थापना की थी। यह आन्दोलन अज्ञान दूर करने तथा ज्ञान व विद्या के प्रचार करने का आन्दोलन है। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में सभी अन्धविश्वासों व मिथ्या परम्पराओं का खण्डन भी किया था। उन्होंने स्त्री व शूद्रों को वेदाध्ययन एवं वेदप्रचार का अधिकार दिया। मूर्तिपूजा के स्थान पर निराकार ईश्वर की पूजा व ध्यान करना सिखाया। ऋषि ने दैनिक यज्ञ व अग्निहोत्र को सबके लिये करणीय एवं लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति का आधार बताया वा सिद्ध किया। ऋषि दयानन्द ने ही सबसे पहले देश की आजादी के लिये प्रेरणा की थी और ऐसा करते हुए स्वदेशीय राज्य को सर्वोपरि उत्तम बताया था।

ऋषि दयानन्द के अनुयायियों ने सबसे अधिक क्रान्तिकारी व हिंसा रहित शान्तिपूर्ण आन्दोलनों में भाग लिया। देश से अविद्या दूर करने के लिये आर्यसमाज ने देश में डीएवी स्कूल व कालेज सहित वेद वेदांग के केन्द्र गुरुकुल स्थापित किये। समाज से जन्मना जातिवाद तथा छुआछूत को दूर करने का आन्दोलन किया। बाल विवाह को समाप्त कराया तथा कम आयु की विधवाओं के पुनर्विवाह को स्वीकार किया। ऋषि दयानन्द ने पूर्ण युवावस्था में युवक व युवतियों के विवाह का समर्थन किया और इसके प्रमाण भी वेद व वेदानुकूल ग्रन्थ मनुस्मृति आदि से दिये। ऋषि दयानन्द ने जन्मना जातिवाद को दूर कर उसके स्थान पर गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित वैदिक वर्ण व्यवस्था का प्रचार किया। सद्गृहस्थ सहित वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम का सत्यस्वरूप भी देश व समाज के समाने रखा। देश की उन्नति में सर्वाधिक योगदान यदि किसी एक व्यक्ति व संगठन का है तो वह व्यक्ति व संगठन ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज ही हैं। ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के महत्व से परिचित होने के लिये देशवासियों को ऋषि दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश तथा उनका जीवनचरित्र विशेष रूप से पढ़ने चाहिये। ऋषि के अन्य ग्रन्थ पढ़ने से भी मनुष्य की सभी शंकायें व भ्रान्तियां दूर होती हैं। हम अनुमान से कह सकते हैं कि यदि ऋषि दयानन्द वेदों का उद्धार वा वेदों का प्रचार कर अन्धविश्वासों तथा कुरीतियों का खण्डन कर समाज सुधार का कार्य न करते तो देश की वह उन्नति, जो आज हम देख रहे हैं, कदापि न होती। ऋषि दयानन्द ने वेदों के आधार पर नये समाज व देश का निर्माण करने की नींव रखी थी। जब तक देश देशान्तर से अज्ञान व अविद्या पूरी तरह से दूर नहीं हो जाते, उनका कार्य अधूरा ही रहेगा।

सम्पादकीय

स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन से प्रेरणा लें

23 दिसम्बर को सम्पूर्ण आर्य जगत् में अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान दिवस उत्साह के साथ मनाया गया। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने अपने वैदिक धर्म और संस्कृति के उत्थान के लिए बलिदान दिया था। स्वामी श्रद्धानन्द सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में पिरोना चाहते थे। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए उन्होंने व्यापक स्तर पर शुद्धि अभियान चलाया। उन्होंने अपने धर्म से विमुख हो चुके लोगों को पुन: वैदिक धर्म में लाने का बीड़ा उठाया। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने अपने सम्पूर्ण जीवन में त्याग समर्पण की भावना से कार्य किया। उन्होंने वेदों की शिक्षाओं को अपने जीवन में आत्मसात् किया हुआ था।

ऋग्वेद के दसवें मण्ड़ल के १५१वें श्रद्धा सूक्त में एक बड़ा ही उत्तम वेद वाक्य है-

श्रद्धा हृदय्याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसून्।

अर्थात् हृदय में अटूट श्रद्धा व संकल्प शक्ति को धारण करके श्रद्धा के द्वारा धन वैभव प्राप्त हो सकता है। वास्तव में यदि देखा जाए तो जो कुछ भी कार्य इस सृष्टि में किया जाता है उसकी सफलता का आधार श्रद्धा व संकल्प शक्ति ही है। दुनिया का कठिन से कठिन कार्य भी श्रद्धा और संकल्प शक्ति से सरल बन जाया करता है और सभी सांसारिक व पारलौकिक सुखों की प्राप्ति सम्भव है। दर्शन शास्त्रों में भी धर्म-अर्थ-काम- मोक्ष को पुरूषार्थ चतुष्टय कहा गया है। अर्थात् सब प्रकार के कार्यों में पुरूषार्थ प्रमुख है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का कार्यक्षेत्र हमेशा से ही श्रद्धा और विश्वास पर आधारित रहा है। जीवन के प्रथम चरण में जब मुन्शीराम ने स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शन नहीं किए थे तब तक वे आस्थाहीन यहां-वहां भ्रमण करते रहे। बरेली में मुन्शीराम का स्वामी दयानन्द से प्रथम साक्षात्कार हुआ तो उसी क्षण उनके जीवन में परिवर्तन की शुरूआत हुई। मुन्शीराम वकालत का कार्य करते हुए भी प्रसन्तापूर्वक उस व्यवसाय के दुर्गुणों से बचते रहे और जब उन्होंने स्वामी दयानन्द के मिशन की पूर्ति के लिए कदम आगे बढ़ाया तो फिर यह ध्यान ही नहीं रहा कि मेरा व्यवसाय क्या है। सब व्यवसायात्मक कार्यों को पूरा करके शिक्षा के क्षेत्र में सूत्रपात किया। कौन जानता था कि उनके द्वारा लगाया गया कांगड़ी गांव में वह छोटा सा पौधा एक दिन विशाल व सुदृढ़ वटवृक्ष का स्थान ले लेगा और अनेक ज्ञानपिपासु पथिक उसकी अमृतमय छाया को प्राप्त कर तृप्ति का अनुभव करेंगे। स्वामी श्रद्धानन्द के अन्दर गुरूकुल के लिए कितनी श्रद्धा थी, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने गुरूकुल के लिए अपनी सम्पत्ति का दान तथा उससे भी बढ़कर गुरूकुल कांगड़ी के लिए सर्वप्रथम अपनी सन्तानों का दान कर दिया। ये दो बातें सिद्ध करती हैं कि स्वामी श्रद्धानन्द अपने संकल्प पर कितने दृढ़ थे।

श्रद्धा उत्पादन सरल कार्य नहीं है। सामान्यतया प्रत्येक कार्य ही श्रद्धाप्लावित होकर पूर्ण होता है। परन्तु वेद का मन्त्र इसे और भी स्पष्ट करता है-

व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षया आप्नोति दक्षिणाम्, दक्षिया श्रद्धां आप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।

अर्थात् श्रद्धा प्राप्ति से पूर्व दो वस्तुओं का होना अनिवार्य है, व्रत और दीक्षा। बिना निश्चयात्मक शक्ति तथा कुशलता के हम कोई भी कार्य पूर्ण नहीं कर सकते। फिर स्वामी श्रद्धानन्द जैसे तमाम महापुरूषों ने तो पराक्रम तथा यश व विशालता से परिपूर्ण अनेक कार्य किए। स्वामी श्रद्धानन्द का सम्पूर्ण जीवन श्रद्धा से परिपूर्ण रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द का सारा जीवन इसी को केन्द्रबिन्दु बनाकर चारों ओर घूमता है। संन्यास ग्रहण करते समय स्वयं उन्होंने यह बात स्वीकार की थी और कहा था कि आज तक मैं सारा जीवन ऋषि दयानन्द के चरणों में बिताने का प्रयास करता रहा हूं। इसीलिए मैं अपना नाम स्वामी श्रद्धानन्द रखना चाहता हूं। ऋषि चरणों में अपनी अगाध श्रद्धा को अभिव्यक्त करते हुए 1925 ई. में मथुरा जन्म शताब्दी के अवसर पर जो भावपूर्ण श्रद्धाजंलि स्वामी जी ने अर्पित की थी, उसका एक-एक शब्द हृदय वीणा के तारों को छूने वाला है-

ऋषिवर! तुम्हें भौतिक शरीर त्यागे 41 वर्ष हो गए हैं परन्तु तुम्हारी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय पटल पर अब तक ज्यों की त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते तुम्हारे स्मरण मात्र ने मेरी रक्षा की है? तुमने कितनी गिरती हुई आत्माओं की काया पलट दी है? इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है? बिना परमात्मा के जिनकी पवित्र गोद में तुम इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशों से निकली अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है? परन्तु अपने विषय में कह सकता हूं कि तुम्हारे सहवास ने मुझे कैसी गिरती हुई अवस्था से उठा कर सच्चा जीवन लाभ करने योग्य बनाया है। मैं क्या था, क्या बन गया और अब क्या हूं, वह सब तुम्हारी कृपा का परिणाम है। भगवन्! मैं तुम्हारा ऋणी हूं, उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूं। इसलिए जिस परमपिता की असीम गोद में तुम परमानन्द का अनुभव कर रहे हो, उसी से प्रार्थना करता हूं कि मुझे तुम्हारा सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करे!

स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे अर्थों में युगपुरूष थे। वे जिधर को चलते थे समय उनके पीछे चलता था। जनता उनके संकेत पर चलने को कटिबद्ध थी। स्वामी श्रद्धानन्द ने सभी क्षेत्रों में ऋषि के मन्तव्यों, वचनों, लेखों तथा इच्छाओं को क्रियात्मक रूप देने का बीड़ा उठाया। ऋषि मन्त्रदाता थे तो स्वामी श्रद्धानन्द मन्त्र साधक थे। विदेशी शिक्षा प्रणाली के विरूद्ध आन्दोलन के रूप में उन्होंने गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना की और इस युग में एक बार पुन: ब्रह्मचर्याश्रम पद्धति के आदर्श को सजीव कर दिया। आर्य जाति की रक्षा के लिए भी उन्होंने प्रयास किया। धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र के साथ-साथ स्वामी श्रद्धानन्द ने राजनीति के क्षेत्र में भी श्रद्धा और पूर्ण विश्वास के साथ कार्य किया। उनकी राजनैतिक गतिविधियां भी उतनी ही प्रभावशाली थी जितनी धार्मिक क्षेत्र की। राष्ट्र के स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में उनका स्थान एक यशस्वी और सेनानायक के रूप में सुरक्षित है। गोरे शासकों के क्रूर अत्याचारों से आतंकित पंजाब कांग्रेस का अधिवेशन बुलाने का किसी में साहस नहीं हुआ तो स्वामी श्रद्धानन्द जी मैदान में उतरे और अमृतसर में कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन आयोजित किया। वे स्वयं इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष बनें और अपने साहस, परिश्रम और श्रद्धा से इस कार्यक्रम को सफल किया।

ऐसी श्रद्धा की साक्षात् मूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान दिवस मनाते हुए हमें भी उनके श्रद्धामय जीवन से शिक्षा लेकर मानवता के कार्य करने चाहिएं। स्वामी श्रद्धानन्द ने सम्पूर्ण जीवन मानवता के लिए कार्य किया। अपनी संस्कृति, सभ्यता और मातृभूमि के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। स्वामी श्रद्धानन्द जी का सम्पूर्ण जीवन प्रेरणाओं से भरा हुआ है। स्वामी श्रद्धानन्द एक सच्चे कर्मयोगी थे। महात्मा गांधी जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी को श्रद्धाजंलि देते हुए कहा था कि स्वामी श्रद्धानन्द जी एक सुधारक थे, कर्मवीर थे, वाक्शूर नहीं। उनका जीवन जागृत विश्वास था। इसके लिए उन्होंने अनेक कष्ट उठाए थे। वे संकट आने पर कभी घबराए नहीं थे। वे एक वीर सैनिक थे। वीर सैनिक रोग शय्या पर नहीं, किन्तु रणांगन में मरना पसन्द करता है। ऐसे वीर पुरूष को श्रद्धाजंलि देते हुए हम भी उनकी तरह कर्मवीर बनें तथा राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान करें।

प्रेम भारद्वाज
सम्पादक एवं सभा महामन्त्री

गीता दर्शन

ले.-डा. सत्यदेव 507-गोदावरी ब्लाक, अशोका सिटी कृष्णा नगर-मथुरा

(गतांक से आगे)

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि गीता के ध्यानमार्ग के अन्तर्गत ध्यान व अनन्य श्रद्धा के सामंजस्य पर बल दिया गया है बिना भगवान के श्रद्धापूर्वक अन्तर्निविष्ट हृदय से भजन किये ध्यानयोग केवल शारीरिक व्यायाममात्र है अर्थात् अपने शरीर को कष्ट पहुंचाना है। अत: गीता के अनुसार ध्यान तथा भक्ति का समन्वय अभीष्ट एवं अपेक्षित है।

2.4 भक्ति मार्ग-गीता के भक्ति मार्ग को भक्तियोग की संज्ञा भी दी गई है। भक्ति मार्ग की शिक्षा देना ही गीता का मूल मन्तव्य है। गीता का हृदय स्थल भक्ति है। यह मार्ग सब विद्याओं का राजा है, जिसे गीता की भाषा में राजविद्या कहा गया है और यह समस्त गूढ़ रहस्यों का रहस्य है। मोक्ष प्राप्ति का चाहे कर्म मार्ग हो या ज्ञान मार्ग या अन्य कोई मार्ग, जब तक इन विविध मार्गों या साधनों में भक्ति का आश्रय नहीं होगा, उनका व्यवहार अपूर्ण एवं अधूरा रहेगा। गीता के एकादश अध्याय में श्रीकृष्ण ने इस बात को प्रतिपादित किया है कि यह देव-दुर्लभ रूप न वेद, न तपस्या, न दान और न यज्ञ से ही देखा जा सकता है। इसका एकमात्र साधन है अनन्या भक्ति अर्थात् अनन्या भक्ति से ही भगवान के विराट् रूप का दर्शन व ज्ञान प्राप्त हो सकता है। अनन्य भक्ति से क्या अभिप्राय है? इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है-

''मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्त: संगवर्जित:।

निवैर: सर्वभूतेषु य: स मामेति पाण्डव:।। गीता, अ. 11/55

अर्थात् जो पुरुष केवल मेरे लिये ही सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों को करने वाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्ति रहित है और सम्पूर्ण भूत प्राणियों में वैरभाव से रहित है, वह अनन्य भक्ति युक्त पुरुष है, हे पाण्डव! वह मुझे ही प्राप्त होता है।

गीता में निष्काम भाव से की गई भगवद् भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। भगवान ने गीता में स्वयं कहा है कि हे अर्जुन! जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर को चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ-

''अनन्याश्चितयन्तो मां यो जना: पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। गीता, अ. 9/22

गीता में निराकार ईश्वर की उपासना को कठिन व क्लेशदायी बताया गया है और सगुणोपासना का उपदेश दिया गया है। भक्तिमार्ग की चर्चा करते समय गीता में चार प्रकार के भक्तों का वर्णन किया गया है-आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी। इन चारों प्रकार के भक्तों में ज्ञानीभक्त को सर्वश्रेष्ठ व भगवान् का आत्म स्वरूप बताया है-

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रिय:।। गीता, अ. 7/18

उदारा: सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

आस्थित: स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।। गीता, अ. 7/18

2.5 समन्वयमार्ग-उपर्युक्त वर्णन में गीता के भिन्न-भिन्न मार्गों की चर्चा की गई है, किन्तु उनमें कौन सा मार्ग जन साधारण के लिए सुकर व सुलभ है-इसकी चर्चा समन्वय मार्ग में की जा रही है। गीता के अठारहवें अध्याय में इस समन्वय मार्ग की बड़ी विशद व्याख्या की गई है। गीता की सम्मति में कर्म, ज्ञान, ध्यान तथा भक्ति मार्ग भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र साधन न होकर, अपने गन्तव्य (मोक्ष या भक्त बन्धन से मुक्ति) पर पहुंचने के लिये अलग-अलग रास्ते हैं, जिन्हें हर आध्यात्मिक पथिक को तय करना होता है। गीता के साधन मार्ग की शुरुआत निष्काम कर्म से तथा उसका अन्त शरणागति से होता है। निष्काम कर्म करने से तथा नियम पूर्वक ध्यानयोग के आभास से साधक ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेता है, जबकि वह उस दिशा में प्रसन्नचित्त होकर समस्त प्राणियों में समता का भाव रखता है। ब्राह्मी स्थिति के प्राप्त होने पर साधक पराभक्ति को प्राप्त करता है और भक्ति के उदित होने पर वह 'पर ज्ञान' का अधिकारी होता है जिसके द्वारा वह भगवान् के स्वभाव व स्वरूप विभूति व गुण को यथार्थ रूप से जानता है। इसका फल भगवत प्राप्ति है। गीता का 'गुह्यतम ज्ञान' यह है कि 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज:' अर्थात् हृदयस्थित अन्तर्यामी ईश्वर की शरण में जाकर सब धर्मों का परित्याग कर दे। इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह कोई काम करे ही नहीं अर्थात् वह उन सब धर्मों का स्वरूपत: परित्याग न करे अपितु ईश्वर के लिए समर्पण बुद्धि से उन कर्मों को पूरा करे। गीता के साधन मार्ग की जानकारी हेतु यह श्लोक अत्यन्त महत्वपूर्ण है:

''मन्मनाभव मद्भक्तों मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण:।। गीता, अ. 9/34

अर्थात् तू (साधक) मुझमें मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन प्रणाम कर। इस प्रकार आत्मा को ईश्वर में नियुक्त करके मेरे परायण होकर मुझको (ईश्वर) ही प्राप्त होगा। इसका तात्पर्य यह है कि जितने साधन विद्यमान हैं, ईश्वर उनके केन्द्र में स्थिर रहने वाला है। उसी को लक्ष्य मानकर विभिन्न साधनों का अपूर्व सामंजस्य पूरा होता है। इन सब बातों का सार यह निकला कि मन लगाना चाहिए भगवान् में, भक्ति करनी चाहिए भगवान् की, यज्ञ करना चाहिए भगवान के विभिन्न (कर्ममार्ग) तथा आश्रय लेना चाहिए भगवन् का ही (शरणागति)। इस प्रकार इन सब मार्गों का समन्वय (अविरोध) भगवन्निष्ठ होने से ही होता है।

शिक्षा के उद्देश्य

गीता दर्शन के अनुसार शिक्षा वह है जो प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्निहित परमात्मा की अनुभूति कराने में सहायक सिद्ध हो। गीता के अनुसार आत्मानुभूति शिक्षा द्वारा ही संभव है। जिस व्यक्ति के ज्ञान-नेत्र खुल जाते हैं, वे ही इस अन्तरात्मा को पहचान सकते हैं, अज्ञानी मोह के बन्धन में पड़ा प्राणी अन्तरात्मा का दर्शन करने में समर्थ नहीं हो सकता-

'उत्क्रामन्त स्थितं वापि, भुंजानं वा गुणान्वितम्।

विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष:।। गीता, अ. 15/10

अत: प्राणीमात्र या जीवमात्र में विद्यमान 'परमात्मा' का दर्शन बिना ज्ञान के संभव नहीं है। 'परमात्मा' शब्द का आशय भगवान् ने स्वयं इस प्रकार समझाया है, हे अर्जुन! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सब का आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।

1. अज्ञान से मुक्त कराना-गीता की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को उस अज्ञान से मुक्त कराना है जो कि भेद उत्पन्न करने वाला है और आत्मानुभूति के मार्ग में बाधक है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का मार्ग सिखाना है। जो भेद में अभेद का दर्शन (भेदाभेद), प्रत्येक प्राणी में एक आत्मा का दर्शन (द्वैताद्वैत) तथा जो सभी प्राणियों में विराजमान परमात्मा (विशिष्टाद्वैत) का दर्शन करवाना है, वस्तुत: वही सच्चा ज्ञान है, यही गीता की शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

2. मोक्ष का मार्ग दिखाना-गीता का मुख्य उपदेश व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना है। जिसके द्वारा मानव प्रकृति, दैवी प्रकृति में बदलकर नैतिक आचरण की ओर अग्रसर होती है और व्यक्ति ईश्वर के साथ तन्मयता अनुभव करने लगता है। गीता-ज्ञान के अनुसार मोक्ष कोई असाध्य वस्तु नहीं है, अपितु व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन लाता हुआ तथा शरीर, इन्द्रिय, मन एवं वाणी से परिशुद्ध व परिष्कृत होता हुआ मुक्ति के मार्ग को प्राप्त कर सकता है। जब मानव की बाह्य एवं आभ्यन्तर शुद्धि हो जाती है तभी वह ईश्वरीय परम ज्योति के दर्शन प्राप्त करने में सक्षम हो सकता है। अर्थात् ईश्वर के परम ज्ञान को पराकाष्ठा ही मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष प्राप्ति के अनन्तर व्यक्ति चिर आनन्द की अनुभूति करता है तथा जन्म-मरणादि भव-बन्धन के फन्दे से उऋण हो जाता है।

3. वैयक्तिकता एवं सामाजिकता का पाठ पढ़ाना-गीता के अन्तर्गत अर्जुन को माध्यम बनाते हुए वैयक्तिकता एवं सामाजिकता का बड़ा ही सुन्दर विवेचन मिलता है। जब अर्जुन कुरुक्षेत्र के रणस्थल में दोनों सेनाओं के मध्य अपने रथ को खड़ा करने के लिए श्रीकृष्ण को कहते हैं तो उस समय अर्जुन की मन: स्थिति व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं सामाजिक कर्त्तव्य के बीच डगमगाती हुई-सी प्रतीत होती है, कुछ समय के लिय वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। वस्तुत: अर्जुन की इसी स्थिति को देखकर श्रीकृष्ण ने गीतोपदेश किया और गीता-दर्शन का उदय हुआ।

अर्जुन चूँकि क्षत्रिय वंशोत्पन्न है तो उसका सामाजिक कर्तव्य बन पड़ता है कि उसे युद्ध करना चाहिए। परन्तु अर्जुन रणक्षेत्र में अपने सामने सगे सम्बन्धियों को खड़ा देखकर सोच-विचार में पड़ जाता है और उनसे लड़कर इस प्रकार की मानसिक शान्ति प्राप्त करना नहीं चाहता। यद्यपि क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पालन करते हुए अर्जुन को मन: शान्ति मिल सकती थी, पर वह उसे ग्रहण न करके कष्ट भोगना पसन्द करता है। यहाँ पर अर्जुन स्वयं को अपने आपको समर्पित कर देता तो अन्तर्निहित अद्वितीय शक्तियों की अनुभूति उसे कैसे हो पाती? उसके व्यक्तित्व का विकास कैसे हो पाता? अत: गीता दर्शन में सामाजिकता से अधिक वैयक्तिक स्वतन्त्रता को महत्व दिया गया है। पर इसका अभिप्राय: यह नहीं कि सामाजिकता का कोई मूल्य ही न हो। आगे चलकर अर्जुन क्षत्रियधर्म का पालन एवं सामाजिकता का निर्वाह भी करता है। हाँ बीच में कुछ मनोविकार अवश्य उत्पन्न होते हैं, जिनका निवारण श्रीकृष्ण बड़ी सुन्दर युक्तियों से कर देते हैं। अत: गीता के अन्दर वैयक्तिक एवं सामाजिक आदर्श के मध्य समन्वय स्थापित किया गया है।

4. करणीय कर्म की प्रेरणा देना-मनुष्य को कर्म करने की स्वतन्त्रता है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह अकरणीय कर्म करे, जिससे दूसरे लोग बाधित हों। अपितु कर्म न करने की अपेक्षा कर्मों का करना श्रेष्ठ है और कर्मों के बिना शरीर निर्वाह

(शेष पृष्ठ 7 पर)

वैदिक जीवन दर्शन

ले.-डॉ. महावीर, एम.ए. (वेद, संस्कृत, हिन्दी) डी. लिट्. व्याकरणाचार्य

(गतांक से आगे)

प्राणिमात्र में मित्र दृष्टि: वैदिक ऋषि सम्पूर्ण संसार को मित्रता की दृष्टि से देखने का संदेश देते हैं। वेद कहता है-

''मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।'' यजु० ३६।१८

अथर्ववेद में गौओं, जगत् के अन्य प्राणियों एवं मनुष्यमात्र के कल्याण की कामना की गयी है-

''स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्य:।।''

(अथर्व १।३१।४)

एक अन्य मन्त्र में कहा गया है-

प्रभु हमारे दोपाये और चौपाये पशुओं के लिए कल्याणकारी और सुखदायी हो-

''शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।'' (यजु० ३६।८)

अथर्ववेद में ही एक अन्य स्थल पर कामना की गयी है कि भगवन्! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मैं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना रख सकूँ-

यांश्च पश्यामि यांश्च न, तेषु मा सुमतिं कृधि।

अथर्व० १७।१।७

सौमनस्य की भावना:

वेदमन्त्रों में सभी जनों में समभाव, परस्पर सौहार्द की भावना व्यक्ति की गयी है। यह अभिलाषा प्रकट की गई है कि परिवार के सभी सम्बन्धी प्रेम-पूर्वक मिल-जुलकर रहें, क्योंकि समाज का मूल परिवार ही है। सब एक दूसरे से मधुर-वाणी में बोलें और सबके मन एक-समान हों। उनमें एक-दूसरे के प्रति पूर्ण सहानुभूति हो। यह सौमनस्य प्रत्येक काल में रहे, जिससे समाज में कलह न हो और सब कार्य सुचारू रूप से चलते रहें, इसी से राष्ट्र उन्नति और समृद्धि को प्राप्त होता है। आज के स्वार्थपरक युग में स्नेह और सौहार्द का यह सन्देश और भी आवश्यक है। अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि व:।

अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

आदि मन्त्रों में यह भावना उत्कृष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई है।

मानव कल्याण की भावना:

ऋग्वेद संसार को सन्देश देता है कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य की सब प्रकार से रक्षा और सहायता करनी चाहिए।

''पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वत:'' (ऋग्० ६।७५।१४)

अथर्ववेद में भी कहा है कि आओ हम सब मिलकर ऐसी प्रार्थना करें, जिससे मनुष्यों में परस्पर सुमति और सद्भावना का विस्तार हो-

''तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्य:।'' अथर्व० ३।३०।४

ऋग्वेद कहता है-

''सखेय सख्ये नर्यो रूचे भव।'' ऋग् ६।१०५।५

मित्र जिस प्रकार मित्र का सहायक होता है वैसे ही तू सब मानवों का हित करने वाला बन और उनका तेज बढ़ा।

वेद की दृष्टि में ऋषि वही है जो मनुष्यों का हितकारी है-

ऋषि: स यो मनुर्हित:।

ऋग् १०।२६।५

ऋत और सत्य की भावना:

वैदिक जीवन दर्शन का मौलिक सिद्धान्त है-ऋत और सत्य। बाह्य जगत की सारी प्रक्रिया विभिन्न प्राकृतिक नियमों के अधीन चल रही है। परन्तु उन सारे नियमों में परस्पर विरोध न होकर एकरूपता या ऐक्य विद्यमान है। इसी को 'ऋत' कहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य के जीवन के प्रेरक जो भी नैतिक आदर्श हैं, उन सबका आधार 'सत्य' है। वेद में 'ऋत' और 'सत्य' की महिमा का हृदयाकर्षक वर्णन अनेक स्थानों पर पाया जाता है। यथा-

ऋतस्य हि शुरूध: सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति।

ऋतस्य श्लोको बधिराततर्द कर्णा बुधान: शुचमान आयो:।।

ऋतस्य दृष्ट्वा धरूणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि।

ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन माव ऋतमा विवेशु:।।

(ऋग् ४।२३।८-६)

अर्थात् ऋत अनेक प्रकार की सुख-शान्ति का स्रोत है। ऋत की भावना पापों को विनष्ट करती है। मनुष्य को उद्बोधन और प्रकाश देने वाली ऋत की कीर्ति बहिरे कानों में भी पहुँच चुकी है। ऋत की जड़ें सुदृढ़ हैं, विश्व के नाना रमणीय पदार्थों में ऋत मूर्तिमान हो रहा है। ऋत के आधार पर ही अन्नादि खाद्य पदार्थों की कामना की जाती है। ऋत के कारण ही सूर्य-रश्मियां जल में प्रविष्ट हो उसको ऊपर ले जाती है।

इसी प्रकार वेद सत्य की महिमा से भरा पड़ा है। वेद-मन्त्रों में कहा गया है कि जिस प्रकार द्यु-लोक का धारण बाह्य लोक से सूर्य द्वारा हो रहा है वैसे ही वास्तविक रूप में इस भूमि का धारण सत्य के आश्रय से ही हो रहा है-

'सत्येनोत्तभिता भूमि: सूर्येणोत्तभिता द्यौ:।'

ऋम्० १०।८५।१

अथर्ववेद के भूमि-सूक्त में भी पृथिवी के धारण करने वाले पदार्थों में सर्वप्रथम सत्य का ही परिगणन किया गया है-

सत्यं बृहदृमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ: पृथिवीं धारयन्ति।

अथर्व० १२।१।१

यजुर्वेद में कहा गया है कि सृष्टिकर्ता परमेश्वर ने सत्य और असत्य के रूपों को देखकर पृथक्-पृथक् कर दिया है। उनमें से श्रद्धा की पात्रता सत्य में ही है। अश्रद्धा की अनृत या असत्य में है।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापति:।

अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापति:।। यजु० १६।७७

भद्र-भावना:

वैदिक मन्त्रों की एक दूसरी विशेषता उनकी भद्र-भावना है। यह कल्याण-भावना भोगैश्वर्य-प्रसक्त, इन्द्रिय-लोलुप या समयानुकूल अपना काम निकालने वाले आदर्श हीन व्यक्तियों की वस्तु नहीं है। मानव को परमोच्च देव-पद पर अधिष्ठित कराने वाली भद्रभावना वैदिक प्रार्थनाओं में पदे-पदे देखी जा सकती है।

जैसे-आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिद:।

देवा नो यथा सद्मिद्वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे-दिवे।।

यज्ञमय जीवन की कामना:

वेद-मन्त्रों में यज्ञीय जीवन जीने की प्रेरणा स्थान-स्थान पर दी गयी है। वेद कहता है-

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।

आयु:प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं यजमानं च वर्धय।। अथर्व० १८।६३।१

हे वेद-पाठ के देवता! उठो, देवताओं को यश का सन्देश सुनाओ। आयु, प्राण, प्रजा, पशु और कीर्ति की वृद्धि करो और यज्ञकर्त्ता को हर प्रकार से बढ़ाओ।

इयं ते यज्ञिया: तनू: (यजु० ४।१३)

तेरा शरीर प्रभु प्राप्ति के लिए है।

ईजाना: स्वर्गं यन्ति लोकम् (अथर्व० १८।४।२)

यज्ञमय और योगमय जीवन का सन्देश वेदमाता इस प्रकार देती है-

मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञदिन्द्र सोमिन:।

मान्त: स्थुर्नो अरातय:।। ऋग्० १०।५७।१

हे ऐश्वर्य सम्पन्न प्रभो! शान्ति तथा ऐश्वर्य के अभिलाषी हम सुपथ से कभी भी विचलित न हों। हम यज्ञमय जीवन से कभी पृथक् न हों। अदान-भावना तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि शत्रु हमारे भीतर न रहें।

वेद कहता है-

उत्क्रामात: पुरुष मावपत्था मृत्यो: षड्वीशमवमुच्यमान:।

अथर्व० ८।१।४

हे पुरुष! उठ खड़ा हो, आगे बढ़, उन्नति कर, नीचे मत गिर, अवनति की ओर मत जा। यदि मृत्यु भी तेरे मार्ग में आकर खड़ी हो जाए तो भी परवाह मत कर, मौत की बेड़ियों को काटता हुआ आगे बढ़।

इस प्रकार वेद प्रतिपादित जीवन दर्शन, मानव मात्र को कल्याण और परमानन्द का सुमार्ग प्रतिपादित कर विश्व में सुख, शान्ति और विश्व बन्धुत्व की गंगा प्रवाहित करता है।

ऋग्वेद में विज्ञान-भाग-3

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

(गतांक से आगे)

अब हम ऋग्वेद मण्डल 1 सूक्त 35 के मंत्रों पर विचार करेंगे। इस सूक्त के ऋषि आंगिरस हिरण्यस्तूप हैं। मंत्र संख्या 1 के देवता मित्र, वरूण और रात्रि तथा मंत्र संख्या 2-11 की देवता सविता है। यह सूक्त हमें वर्तमान विज्ञान के आकाश-समय अन्तनिर्भरता का स्मरण करा देता है।

ह्वयाभ्याग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरूणा विहावसे।
ह्वयामि रात्री जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये।।

ऋ. 1.35.1

पदार्थ-मैं (इह) इस शरीर धारणादि व्यवहार में (स्वस्तये) उत्तम सुख होने के लिए (प्रथमम्) शरीर धारण के आदि साधन (अग्निम्) रूप गुण युक्त अग्नि को (मित्रा वरूणौ) तथा प्राण वा उदान वायु को (ह्वयामि) स्वीकार करता हूँ (जगतः) संसार को (निवेशनीम्) निद्रा में निवेश कराने वालो (रात्रिम्) रात्रि को (ह्वयामि) प्राप्त होता हूँ।

(ऊतये) क्रिया सिद्धि की इच्छा के लिए (देवम्) द्योतनात्मक (सवितारम्) सूर्य लोक को (ह्वयामि) ग्रहण करता हूँ।

भावार्थ-मनुष्यों को चाहिए कि दिन रात सुख के लिए वायु और सूर्य के प्रकाश से उपकार को ग्रहण कर के सब सुखों को प्राप्त होवे।

अगले मंत्र में गुरूत्वाकर्षण के विषय में कहा गया है-

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मृत्यं च।
हिरण्य येन सवितारथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।। ऋ. 1.35.2

पदार्थ-यह (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करने वाला (देवः) सबसे अधिक प्रकाश युक्त परमेश्वर (आकृष्णेन) अपनी आकर्षण शक्ति से (रजसा) सब सूर्यादि लोकों के साथ व्यापक (वर्तमानः) हुआ (अमृतम्) अंतर्यामिरूप वा वेदों द्वारा मोक्ष साधक सत्य ज्ञान (च) और (मर्त्यम्) कर्मों और प्रलय की व्यवस्था से मरण युक्त जीव को (निवेशयम्) अच्छे प्रकार स्थापना करता हुआ (हिरण्ययेन) यशोमय (रथेन) ज्ञान स्वरूप रथ से युक्त (भुवनानि) लोकों को (पश्यन्) देखता हुआ (आयाति) अच्छे प्रकार सब पदार्थों को प्राप्त होता है।

दूसरा अर्थ-यह (सविता) प्रकाश दृष्टि और फलों में रस उत्पन्न करने वाला (कृष्णेन) प्रकाश रहित (रजसा) पृथ्वी आदि लोकों के साथ (आ वर्तमानः) अपनी आकर्षण शक्ति से वर्तमान इस जगत् में (अमृतम्) वृष्टि द्वारा अमृत स्वरूप (च) तथा (मर्त्यम्) काल व्यवस्था से मरण को (निवेशयन्) अपने-अपने सामर्थ्य से स्थापना करता हुआ (हिरण्ययेन) प्रकाश स्वरूप (रसेन) गमन शक्ति से (भुवतानि) लोकों को (पश्यन्) देखता हुआ (आयाति) अच्छे प्रकार वर्षा आदि रूपों की अलग-अलग प्राप्ति करता है।

भावार्थ-इस मंत्र में श्लेषालंकार है। जैसे सूर्य सब पृथ्वी आदि लोकों मनुष्य आदि प्राणियों को अपनी आकर्षण शक्ति से धारण कर रहा है। इस सूर्य के गुरूत्वाकर्षण के अभाव में अन्तरिक्ष में किसी भी भार युक्त लोक का अपनी परिधि में स्थित होना असंभव है। साथ ही सभी लोकों के लगातार भ्रमण के अभाव में काल के अवयव क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिन-रात, पक्ष, मास ऋतु और संवत्सर आदि कालों के अवयवों का उत्पन्न होना भी संभव नहीं है।

अगले मंत्र में वायु को ध्वनि का माध्यम बताया गया है।

याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम्।
आ देवा याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः।।

ऋ. 1.35.3

पदार्थ-जैसे (विश्वा) सब (दुरिता) दुष्ट दुःखों को (अप, बाधमानः) दूर करता हुआ (यजतः) संगम करने योग्य (देवः) श्रवण आदि ज्ञान का प्रकाशक वायु (प्रवृता) नीचे मार्ग से (याति) जाता-आता और (उद्वता) ऊर्ध्व मार्ग से (आति) जाता-आता है और जैसे सब दुःख देने वाले अंधकार आदि को दूर करता हुआ (यजतः) संगत होने योग्य (सविता) प्रकाशक सूर्य लोक (शुभ्राभ्याम्) शुद्ध (हरिभ्याम्) कृष्ण वा शुक्ल पक्षों से (परावतः) दूरस्थ पदार्थों को अपनी किरणों से प्राप्त होकर पृथिव्यादि लोकों को (आयाति) सब प्रकार प्राप्त होता है वैसे शूरवीर आदि लोग सेना आदि सामग्री सहित ऊँचे नीचे मार्ग में जा आकर शत्रुओं को जीत कर प्रजा की निरन्तर रक्षा किया करें।

भावार्थ-जैसे ईश्वर की उत्पन्न की हुई सृष्टि में वायु नीचे, ऊपर और समगति से चलता हुआ नीचे के पदार्थों को उठा कर ऊपर और ऊपर के पदार्थों को नीचे करता रहता है और जैसे सूर्य अपने गुरूत्वाकर्षण से सब लोकों को धारण कर अपने किरण समूह से अंधकार आदि को हटा कर दुःखों का विनाश कर सुख और सुखों का विनाश कर दुःखों को प्रकट करता है वैसे ही राजा आदि को भी अनुष्ठान करना चाहिए।

इस मंत्र में वायु को ध्वनि का माध्यम तथा सूर्य को अंधकार का निवारक एवं अपने गुरूत्वाकर्षण से सात लोकों का धारण करने वाला बताया है। विज्ञान की भी यही मान्यता है। वेद में अग्नि के तीन रूप माने हैं-सूर्य, विद्युत और काष्ठादि से प्राप्त अग्नि। तारों चन्द्रमा आदि सूर्य के प्रकाश से ही चमकते हैं।

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्था एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधित्तस्थु रिह ब्रवीतु य 3 तच्छिकेत्।।

ऋ. 1.35.6

पदार्थ-हे विद्वान्। तू (रथ्यम्) रथ आदि के चलाने योग्य (आणिम्) संग्राम को जीतने वाले राज भृत्यों के (न) समान इस (सवितुः) सूर्य लोक के प्रकाश में जो (तिस्रः) तीन अर्थात् (द्यावः) सूर्य अग्नि और विद्युत रूप के साधनों से युक्त (अधितस्थुः) स्थित होते हैं उनमें से (द्वौ) दो प्रकाश वा भूगोल सूर्य मंडल के (उपस्था) समीप में रहते हैं और (एका) एक (विराषाट्) शूरवीर ज्ञानवान् प्राप्ति स्वभाव वाले जीवों को सहने वाली बिजली रूप दीप्ति (यमस्य) नियम करने वायु के (भुवने) अन्तरिक्ष में ही रहती है और जो (अमृता) कारण रूप से नाश रहित चन्द्र, तारे आदि लोक हैं वे इस सूर्य लोक के प्रकाश से प्रकाशित होकर (अधितस्थुः) स्थित होते हैं। (यः) जो मनुष्य (उ) वाद विवाद से इनको (चिकेतत्) जाने और इस ज्ञान को (ब्रवीतु) अच्छे प्रकाश उपदेश करे उसी के समान होकर हमको सद्गुणों का उपदेश किया कर।

भावार्थ-परमात्मा ने अग्निरूप कारण से सूर्य, अग्नि और विद्युत की रचना की है। इनके द्वारा हमारे कई कार्य सिद्ध होते हैं। पृथ्वी, चन्द्रमा और नक्षत्र आदि लोक सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। विद्वान् ही हमारे प्रश्नों के सही उत्तर दे सकते हैं।

अगले मंत्र में प्रश्न किया गया है कि सूर्य रात्रि के समय कहां चला जाता है। इसका उत्तर दिया गया है कि रात्रि को सूर्य पृथ्वी के दूसरे पृष्ठ भाग में रहता है, जब एक पृष्ठ में दिन होता है तो दूसरे पृष्ठ में रात होती है। दिन में नक्षत्रादि तारे भी आकाश में रहते हैं परन्तु सूर्य के प्रकाश के कारण दृष्टि गोचर नहीं होते हैं।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिर्नो अद्य प्रथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव।।

ऋ. 1.35.11

पदार्थ-हे (सवितः) सकल जगत् के रचने और (देव) सब सुख देने वाले जगदीश्वर (ये) जो (ते) आपके (अरेणवः) जिनमें कुछ भी धूलि के अंशों के समान विघ्न रूपमल नहीं है तथा (पूव्यक्षिः) जो हमारी अपेक्षा से प्राचीनों ने सिद्ध और सेवन किये हैं (सुकृताः) अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (पंथाः) मार्ग (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में, ब्रह्माण्ड में वर्तमान है (तेभिः) उन (सुगेभिः) सुख पूर्वक सेवन करने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (नः) हम लोगों की (अद्य) आज (रक्ष) रक्षा कीजिए (च) और (नः) हम लोगों के लिए सब दिशाओं का (अधि ब्रूहि) उपदेश (च) भी कीजिए।

भावार्थ-परमात्मा ने सूर्य आदि लोकों के घूमने और प्राणियों के सुख के लिए आकाश में शुद्ध मार्गों की रचना की है। जिनमें सूर्यादि लोक यथा नियम से और प्राणी विचरते हैं।

अब एक मन्त्र और देकर इस सूक्त पर लेखनी को विराम देंगे।

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्या स्त्री धन्य योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि।।

ऋ. 1.35.8

पदार्थ-हे सभाध्यक्ष। जैसे जो (हिरण्यक्षः) जिसकी स्वर्ण के समान ज्योति है वह (सविता) वृष्टि करने वाला (देवः) द्योतनात्मक सूर्य लोक (पृथिव्याः) पृथ्वी से सम्बन्ध रखने वाली (अष्टौ) आठ (ककुभः) दिशा अर्थात् चार दिशा और उपदिशाओं (त्री) तीन भूमि, अन्तरिक्ष और प्रकाश के अर्थात् ऊपर नीचे और मध्य में ठहरने वाले (धन्व) प्राप्त होने योग्य (योजना) सब वस्तुओं के आधार तीन लोकों और (सप्त) सात (सिन्धून्) भूमि अंतरिक्ष वा ऊपर स्थित हुए जल समुदायों को (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है वह (दाशुषे) सर्वोपकारक विद्यादि उत्तम पदार्थ देने वाले यजमान के लिए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य (रत्ना) पृथ्वी आदि वा स्वर्ण आदि रमणीय रत्नों को (दधत्) धारण करता हुआ (आगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी वर्तो।

भावार्थ-यह सूर्य लोक सब मूर्तिमान् पदार्थों का प्रकाश छेदन वायु द्वारा अन्तरिक्ष में प्राप्त और वहाँ से नीचे घेर कर रमणीय सुखों को जीवों को उत्पन्न करता और पृथ्वी में स्थित और 49 कोस पर्यन्त अन्तरिक्ष में स्थूल, सूक्ष्म, लघु और गुरू रूप से स्थित हुए जलों को आकर्षण से धारण करता है।

पृष्ठ 4 का शेष-गीता दर्शन

असम्भव है। अत: क्यों न नि:स्वार्थ एवं अनासक्त भाव से विहित कर्म किये जायें अर्थात् करणीय कर्म अवश्य करने चाहिए। इसी तथ्य को श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस प्रकार स्पष्ट किया है। हे अर्जुन! तू शास्त्रविहित करणीय कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा। इसी बात को श्रीकृष्ण ने गीता के तृतीय अध्याय के आठवें श्लोक में अर्जुन को समझाया है।

गीता के अनुसार करणीय कर्म करना हम सब का परमात्मा के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त करना है, किन्तु कर्म करते समय फल की लालसा नहीं करनी चाहिए, अनासक्त व निर्लिप्त भाव से फल की चिन्ता किये बिना कर्म किया जाना चाहिए। अत: अपने-अपने कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त करता है। इस तथ्य की पुष्टि गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक संख्या 47 एवं अठाहरवें अध्याय के 45वें श्लोक में मिलती है।

5. आत्मा की पुकार का अनुसरण करने की प्रेरणा देना-गीता की शिक्षा का मुख्य-उद्देश्य सामाजिक उत्तरदायित्वों को निभाने के साथ-साथ मानवमात्र में विराजमान अन्तरात्मा की पुकार के अनुसार कर्म करने, अन्तरात्मा का अनुसरण करने एवं तदनुकूल अपने जीवन को ढालने की प्रेरणा देता है। समाज में कई बातें देश-काल सापेक्ष हो सकती है। कुछ बातें आज जैसे जानने में निहित स्वार्थों को लेकर अन्तरात्मा की पुकार के विपरीत बहुमत द्वारा अनुमोदित एवं पारित हो सकती हैं, भले ही अन्तरात्मा चीत्कार क्यों न करती रहे। किन्तु गीता दर्शन के अनुसार किसी भी व्यवहार की कसौटी समाज द्वारा मान्य व्यवहार नहीं, अपितु आत्मा की पुकार के अनुरूप व्यवहार करना है।

हमारे सामने यह प्रश्न उठ सकता है कि आत्मा या अन्तरात्मा प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती है या एक ही? यदि सब में एक ही आत्मा है तो हरेक का व्यवहार भिन्न-भिन्न क्यों होता है? इसका उत्तर यही है कि विभिन्न व्यक्तियों की प्रकृति भिन्न-भिन्न हो सकती है, व्यवहार में अन्त:करण की प्रकृति भी भिन्न-भिन्न रूप से अभिव्यक्त होती हुई-सी दिखाई पड़ सकती है किन्तु गीता कहती है कि हम सबकी आत्माएँ एक समान हैं, उन सब में एक ही ईश्वरीय सत्ता समान रूप से अन्तर्निहित है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी आत्मा या अन्तरात्मा की पुकार का अनुसरण करता हुआ कर्म या व्यवहार करता है तो वह ईश्वर की उसी सत्ता के लक्ष्य को पूरा करता है जो संसार के हर प्राणी में समान रूप से विद्यमान है और जो सम्पूर्ण सृष्टि में समान रूप से व्याप्त है।

भगवद्गीता और पाठ्यक्रम

गीता में दो प्रकार के पदार्थों का वर्णन किया गया है-क्षर तथा अक्षर। इन्हीं दोनों पदार्थों को गीता के सातवें अध्याय में अपरा और परा प्रकृति कहकर वर्णन किया गया है। शिक्षा दर्शन की दृष्टि से गीता के पाठ्यक्रम को इन्हीं दो भागों में विभक्त किया गया है, जिनका नाम अपराविद्या और पराविद्या रखा है।

अपराविद्या के अन्तर्गत भौतिक जगत् के ज्ञान की चर्चा की गई है। यह ज्ञान देहेन्द्रियों की मदद से प्राप्त किया जाता है। दृश्यमान सम्पूर्ण सृष्टि 'अपराविद्या' के ज्ञान का ही एक अंग है। इस संसार में अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए 'अपराविद्या' का ज्ञान परमावश्यक है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि 'अपराविद्या' ही सर्वोपरि है, अपितु यह तो भौतिक जगत् में सफलतापूर्वक जीवन निर्वाह करने का एक माध्यम है। गीता में 'अपराविद्या' को एक साधन रूप में बताया गया है। वस्तुत: 'अपराविद्या' जड़ प्रकृति का पूर्णज्ञान प्राप्त करना ही है और यह पराविद्या तक पहुंचने का साधन भी है। किन्तु यह सब कुछ होते हुये भी 'अपराविद्या' 'पराविद्या' से बढ़कर नहीं है अपितु उससे हीन है। अत: 'अपराविद्या' के अन्तर्गत सभी प्रकार के वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन, मन तथा बुद्धि से प्राप्त अनुभूतिजन्य ज्ञान आता है।

'परा विद्या' को गीता में अक्षर तत्व, अध्यात्म व क्षेत्रज्ञ जैसे नामों से अभिहित किया गया है और 'पराविद्या' को अपरा विद्या से उच्च स्तर का बताया गया है। 'पराविद्या' के अन्तर्गत आत्मज्ञान आता है। यह ज्ञान नित्य, पूर्ण, सत्य तथा सनातन कहलाता है। वस्तुत: पराविद्या भगवान की दूसरी प्रकृति है। केवल अविद्या के कारण यह तत्व भिन्न दिखाई पड़ता है। अपरा प्रकृति के प्रत्येक रूप के पीछे परब्रह्म परमात्मा की सत्ता निहित है और यही 'पराविद्या' का सार है। इन्हीं बिन्दुओं को गीता के सातवें अध्याय के श्लोक संख्या चार से लेकर ग्यारह तक सविस्तार स्पष्ट किया गया है।

अध्यापन-विधि

अध्ययन अध्यापन की भले ही कोई भी विधि क्यों न हो, किन्तु हरेक विधि में मनो-वैज्ञानिकता अवश्य होनी चाहिए। अध्यापन-विधि बालक की योग्यता, प्रवृत्तियों रुचि व रुझान को केन्द्र बिन्दु मान प्रयुक्त की जानी चाहिए।

1. प्रश्नोत्तर विधि-गीता का प्रारम्भ प्रश्नोत्तर विधि के द्वारा होता है, जब धृतराष्ट्र धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र विषयक प्रश्न संजय से करता है और संजय पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देता है। इसके अलावा गीता में अर्जुन बार-बार अपने सारथी श्रीकृष्ण से प्रश्नोत्तर करता है और श्रीकृष्ण उसे समझाने की चेष्टा करते हैं। यदि देखा जाये तो गीत प्रश्नोत्तरी के रूप में प्रस्तुत एक काव्य ग्रन्थ है। प्रश्नोत्तर विधि को दूसरे शब्दों में संवाद-विधि भी कहते हैं।

2.1 करणीय कर्म विधि-गीता का मूल मन्तव्य मानव मात्र को अपने कर्त्तव्य कर्म का बोध कराना ही है। गीता की उत्कृष्टता इसी में है कि व्यक्ति को कर्म विधान की शिक्षा दे। गीता में विभिन्न स्थलों पर करणीय कर्म करने की विधि का सूत्रपात किया गया है। द्वितीय अध्याय के 47 व 50 वे श्लोक में कहा गया है कर्म करने में तेरा अधिकार है फल में नहीं। 'कर्मव्येवाधिकाररस्ते मा फलेषु कदाचन।' समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है। तीसरे अध्याय में अर्जुन को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं-तू शास्त्रविहित कर्त्तव्य कर्म कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। तू निरन्तर आसक्ति रहित होकर कर्त्तव्य कर्म को भलीभाँति करता रहा। आगे चलकर भगवान ने गीता के स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी है तथा योगी हैं अर्थात् करणीय कर्म को अनासक्त भाव से करने वाले पुरुष को उत्तम व श्रेष्ठ बताया है। अन्त में कर्म विधि की परिणति इस रूप में की गई है कि स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता-'सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।' इस प्रकार करणीय कर्मों को ईश्वर परायण बुद्धि से करता हुआ कर्मयोगी सनातन अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जाता है।

3. अनुकरण विधि-गीता के कुछ श्लोकों में इस प्रकार का वर्णन भी हुआ है कि जो आचरण श्रेष्ठतया महापुरुष करें, उनके आचरण के अनुरूप ही दूसरे लोग भी अपने आचरण को बनायें। अर्थात् अपने से बड़ों के आचरण का अनुकरण करना चाहिए। बड़ों से अपेक्षा की जाती है कि वे सदाचरण से सम्पन्न हों।

'यदयदाचरति श्रेष्ठत्तत्रदेवेतरोजनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। गीता अ. 3/21

4. समर्पण विधि-गीता में जगह-जगह पर परमात्मा के प्रति समर्पण भाव को अत्यन्त महत्व दिया गया है। श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से कहा है कि जो व्यक्ति एक बार भी परमात्मा की शरण में आ जाता है, मैं उसका योग-क्षेम स्वयं वहन करता हूँ। दूसरे अध्याय के श्लोक 7 में अर्जुन कहता है-मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण आया हूँ, अत: मुझे शिक्षा दीजिए।'' तीसरे अध्याय के 30वें श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके युद्ध कर-मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्या-ध्यात्म चेतसा। तत्वज्ञान की चर्चा करते हुए कहा गया है कि तत्वज्ञान की प्राप्ति करने के लिए दण्डवत् प्रणाम, सेवा भावना से ज्ञानवान तत्वदर्शी महापुरुषों की शरण में जाना चाहिए, जिससे आत्मकल्याण हो सके। नवें अध्याय में अपने सभी कर्म भगवदर्पण करने का आदेश दिया गया और स्पष्ट किया कि जो कर्म करता है, खाता है, हवन करता है, दान देता है, तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर तत्कुरूष्व-मदर्पणम्। अर्थात् यहां पर भी समर्पण भावना के माध्यम से अर्जुन को शिक्षा दी गई है। इस प्रकार जो मनुष्य मुझ में मन वाला होगा, जो भगवान् को प्रणाम करेगा और अन्त में अपनी आत्मा को भगवान् में नियुक्त कर भगवत्परायण होकर कर्म करेगा, वह अन्त में भगवत्स्वरूप को प्राप्त होगा अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने में सक्षम होगा। समर्पण विधि का उच्चतम स्वरूप हमें गीता के 18वें अध्याय के इस श्लोक में देखने को मिलता है:-

''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

गीता अ. 18/66

अर्थात्-सम्पूर्ण धर्मों को त्यागकर एक मुझ सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर।

अन्त में यही कहना है कि गीता प्रत्यक्ष रूप में एक नैतिक ग्रन्थ है, एक योग शास्त्र है। चूँकि गीता की रचना एक नैतिक धर्म के युग में हुई, इसलिए उस नैतिक युग की भावना में इसने भी भाग लिया। जिस प्रसंग में गीता का उपदेश दिया गया, वह यह निर्देश करता है कि इसका मुख्य प्रयोजन जीवन की समस्या को हल करना और न्यायोचित आचरण की प्रेरणा देना है।

गीता की योगशिक्षा का मूल ब्रह्मविद्या अथवा आत्म सम्बन्धी ज्ञान है। वस्तुत: गीता हमारे जीवन का विधान है, बुद्धि के द्वारा सत्य का अनुसंधान है और सत्य को मनुष्य की आत्मा के अन्दर क्रियात्मक शक्ति देने का प्रयत्न है। गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्तिम वाक्य-'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे'' से यह सिद्ध हो जाता है, यह एक योगशास्त्र है अर्थात् ब्रह्म-सम्बन्धी दर्शन-शास्त्र का धार्मिक अनुशासन है।

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर गरीब परिवारों की सहायता के लिये अग्रसर: सुदर्शन शर्मा

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में विगत दिनों सर्दी के मौसम में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने अपने पूज्य पिता पंडित हरबंस लाल शर्मा जी एवं पूज्या माता श्रीमती राजरानी जी की स्मृति में गरीब परिवारों को कम्बल एवं खाद्य सामग्री वितरित की। इस अवसर पर आर्य समाज के प्रांगण में पहुंचने पर सभा प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी का स्वागत करते हुये आर्य समाज के प्रधान श्री रणजीत आर्य जी एवं अन्य सदस्य। चित्र दो में गरीब परिवारों में राशन एवं गर्म कम्बल वितरित करते हुये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में आर्य समाज के सहयोग से चल रही शिक्षा केन्द्र में शिक्षा प्राप्त कर रहे गरीब बच्चों के अभिभावकों को अपने पूज्य पिता पंडित हरबंस लाल शर्मा एवं पूज्य माता श्रीमती राजरानी शर्मा जी की स्मृति में 125 परिवारों को गर्म कम्बल एवं खाद्य सामग्री वितरित की। इस अवसर पर आर्य समाज के प्रधान श्री रणजीत आर्य ने कहा कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी गरीब परिवारों एवं झुग्गी झोंपडी वाले बच्चों को जो आर्य समाज में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उन गरीब परिवारों को खाद्य सामग्री एवं कम्बल वितरित करते रहते हैं। उन्होंने कहा कि इस सर्दी के मौसम में इन परिवारों को सर्दी के बचाव के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने जो सहायता की है वह सराहनीय है।

इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी ने कहा कि आर्य समाज की स्थापना करने के पश्चात महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के जो दस नियम बनाए, उनमें उन्होंने अपना लक्ष्य निर्धारित करते हुए छठे नियम में लिखा कि- संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। वेद में कहा गया है कि संसार को उन्नत करो। यह नियम ऐसा अद्भुत और अनोखा है जो संसार के किसी संगठन में नहीं पाया जाता। प्रत्येक समाज अपने समान विचार वाले लोगों को प्रमुखता प्रदान करता है। संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। आर्य समाज किसी एक देश या जाति विशेष से सम्बन्धित नहीं हैं । एक आर्य के लिए आर्य समाज के सदस्य ही नहीं अपितु संसार के दूसरे व्यक्ति, व्यक्ति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण प्राणीमात्र सहानुभूति, दया और प्रेम के पात्र हैं। उन्होंने कहा कि शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति कहकर महर्षि दयानन्द ने उपकार को भी निश्चित कर दिया है। अन्य मत और सम्प्रदायों में विशेषकर शारीरिक उन्नति पर ध्यान नहीं दिया जाता। उनके विचार में धर्म का सम्बन्ध स्वर्ग की बातों से है। परन्तु वे भूल जाते हैं कि हमारा शरीर आत्मा का रथ है और रथ के बिना यात्री अपनी मंजिल पर नहीं पहुंच सकता। शरीर ही लौकिक और पारलौकिक उन्नति का साधन है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं तो आत्मा कभी अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुंच सकेगा। ऋषि दयानन्द धर्म में शारीरिक उन्नति को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं क्योंकि दुर्बल मनुष्य प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर की सराहना करते हुये कहा कि यह आर्य समाज हमेशा गरीब परिवारों की सहायता के लिये अग्रसर रहती है।

आर्य समाज के महामंत्री हर्ष लखनपाल जी ने मंच का संचालन किया और शिक्षा ग्रहण कर रहे बच्चों ने गायत्री महामंत्र का जाप करके कार्यक्रम के मुख्यातिथि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी का अभिनंदन किया। इस अवसर पर आर्य समाज के संरक्षक ओम प्रकाश मेहता, कोषाध्यक्ष भूपेन्द्र उपाध्याय, चौधरी हरी चंद, विजय कुमार चावला, श्री सुरेन्द्र अरोड़ा, गीतिका अरोड़ा, श्रीमती पूनम मेहता, संदीप अरोड़ा, नवीन आर्य, स्वर्ण शर्मा, ललित मोहन कालिया, प्रवीण लखनपाल, प्रिया मिश्रा, अर्चना मिश्रा, केदारनाथ शर्मा एवं आर्य समाज के अन्य सदस्यों ने मिल कर सभा प्रधान जी का स्वागत किया।

वेदवाणी

हे वरुण! हमें अनृत=असत्य से मुक्त करो

बह्वी३दं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः।
तस्मात् सहस्त्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः।।

-अथर्व० १९।४४।८

ऋषिः-**भृगुः**।। देवता-**वरुणः**।। छन्दः-**अनुष्टुप्**।।

विनय-हे सच्चे राजा, हे पापनिवारक! मनुष्य बहुत अनृत बोला करता है और बड़ी तुच्छ-तुच्छ बातों पर अनृत बोला करता है। प्रातः से लेकर रात्रि तक एक दिन में ही न जाने कितनी बार असत्य भाषण करता है। हम मनुष्यों का जीवन इतना अनृतमय हो गया है कि प्रायः हम लोग यह अनुभव ही नहीं करते कि हम कितना अधिक असत्य बोलते हैं। यह अनुभव तो तब मिलता है जब मनुष्य सचमुच झूठ से घबराने लगता है और सत्य ही बोलने के लिए सदा सचिन्त रहने लगता है। उस समय मुख से निकली अपनी एक-एक वाणी पर पूरा-पूरा निरीक्षण और विवेचन करने पर उसे पता लगता है कि वह सूक्ष्म रूप में कितना अधिक असत्य बोलता है।

सच तो यह है कि हममें से जो लोग अपने को सत्य बोलने वाला समझते हैं वे भी असल में बहुत असत्य बोलते हैं। जो पूरा सत्यवादी होगा, पतंजलि, व्यास आदि ऋषि-मुनियों के कथनानुसार, उसकी वाणी में तो ऐसा तेज आ जाएगा कि वह जो कुछ कहेगा, वह सच्चा हो जाएगा। वह क्रिया और फल से समन्वित हो जाएगा। यदि वह किसी को कहेगा कि 'तू नीरोग हो जा' तो वह नीरोग हो जाएगा अर्थात् जो कार्य हम हाथ-पैर आदि की स्थूल शक्ति से सिद्ध करते हैं वह पूरे सत्यवादी पुरुष की वाणी की शक्ति से हो जाता है, अतः वास्तव में हममें से ऊँचे-ऊँचे पुरुष भी अभी सर्वथा असत्यरहित नहीं हुए हैं।

हे सहस्त्रवीर्य! इस असत्य से तुम्हीं हमें बचाओ। हमने आत्मनिरीक्षण करते हुए सदा देखा है कि हम सदैव तुच्छ भय, लोभ, आसक्ति आदि के कारण ही, सदैव अपनी कमज़ोरी, निर्बलता, वीर्यहीनता के कारण ही असत्य बोलते हैं, अतः हे अपरिमित वीर्यवाले! तुम हमें ऐसे वीर्य और बल से भर दो कि हम सदा निधड़क होकर सत्य ही बोलें, झूठ बोल ही न सकें, झूठ बोलने की कभी आवश्यकता ही अनुभव न करें। सचमुच आपकी सहस्त्रवीर्यता का ध्यान कर लेने पर हममें इतना बल-सञ्चार हो जाता है कि हम अनुभव करने लगते हैं कि हम भी कभी पूरे सत्यवादी हो जाएँगे। इस तरह, हे सहस्त्रवीर्य! तुम हमें सदा असत्य से छुड़ाते रहो, असत्य के पाप से हमें सब ओर से मुक्त करते रहो।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड, जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक:-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**